

## Chapter चौदह

### भगवान् श्रीकृष्ण का अन्तर्धान होना

सूत उवाच

सम्प्रस्थिते द्वारकायां जिष्णौ बन्धुदृक्षया ।

ज्ञातुं च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम् ॥ १ ॥

#### शब्दार्थ

सूतः उवाच—सूत गोस्वामी ने कहा; सम्प्रस्थिते—जाकर; द्वारकायाम्—द्वारका नगरी में; जिष्णौ—अर्जुन; बन्धु—मित्रों तथा सम्बन्धियों से; दृक्षया—मिलने के लिए; ज्ञातुम्—जानने के लिए; च—भी; पुण्य-श्लोकस्य—जिनका यश वैदिक स्तोत्रों द्वारा गाया जाता है; कृष्णस्य—भगवान् कृष्ण का; च—तथा; विचेष्टितम्—अगला कार्यक्रम।

श्री सूत गोस्वामी ने कहा : भगवान् श्रीकृष्ण तथा अन्य मित्रों को मिलने तथा भगवान् से उनके अगले कार्यक्रमों के विषय में जानने के लिए अर्जुन द्वारका गये।

तात्पर्य : जैसा कि *भगवद्गीता* में कहा गया है, भगवान् इस पृथ्वी पर धर्मात्माओं की रक्षा करने तथा अधर्मियों का संहार करने के लिए अवतीर्ण हुए थे, अतएव कुरुक्षेत्र का युद्ध समाप्त होने तथा महाराज युधिष्ठिर का राज्य स्थापित हो जाने पर भगवान् का कार्य पूर्ण हो चुका था। पाँच पाण्डव और विशेष रूप से अर्जुन, भगवान् कृष्ण के सनातन संगी थे। अतएव कृष्ण से उनके अगले कार्यक्रम के विषय में जानने के लिए अर्जुन द्वारका गये।

व्यतीताः कतिचिन्मासास्तदा नायात्ततोऽर्जुनः ।

ददर्श घोररूपाणि निमित्तानि कुरूद्वहः ॥ २ ॥

#### शब्दार्थ

व्यतीताः—व्यतीत करके; कतिचित्—कुछ; मासाः—महीने; तदा—उस समय; न आयात्—नहीं लौटा; ततः—वहाँ से; अर्जुनः—अर्जुन; ददर्श—देखा; घोर—भयानक; रूपाणि—दृश्य; निमित्तानि—विभिन्न कारण; कुरु-उद्धहः—महाराज युधिष्ठिर ने।

कुछ मास बीत गये, किन्तु अर्जुन वापस नहीं लौटे। तब महाराज युधिष्ठिर को कुछ अपशकुन दिखने लगे, जो अपने आप में अत्यन्त भयानक थे।

**तात्पर्य :** पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण अनन्त हैं, हमारे संसार के सर्वाधिक शक्तिमान सूर्य से भी अधिक शक्तिशाली हैं। उनके एक श्वास-काल में लाखों-करोड़ों सूर्यों की सृष्टि और पुनः उनका संहार होता रहता है। भौतिक जगत में, सूर्य को समस्त उत्पादकर्ता तथा सारी भौतिक शक्ति का स्रोत माना जाता है और सूर्य के कारण ही हमें जीवन की आवश्यकताएँ उपलब्ध होती हैं। अतएव जब पृथ्वी पर भगवान् स्वयं उपस्थित थे, तो उस समय उनकी उपस्थिति के कारण हमारी शान्ति तथा सम्पन्नता का सारा साज-सामान, विशेष रूप से धर्म तथा ज्ञान, अपनी चरमावस्था में थे, जिस प्रकार चमकते सूर्य की उपस्थिति में सर्वत्र प्रकाश झलझलाता रहता है। महाराज युधिष्ठिर को अपने राज्य में कुछ न्यूनताएँ दिखीं, अतएव वे अर्जुन के विषय में अत्यधिक चिन्तित हो उठे, जो दीर्घकाल से अनुपस्थित थे और द्वारका की कुशलता का भी कोई समाचार नहीं मिला था। उन्हें भगवान् कृष्ण के अन्तर्धान होने की आशंका हुई, अन्यथा ऐसे भयानक अपशकुनों की सम्भावना नहीं थी।

कालस्य च गतिं रौद्रां विपर्यस्तर्तुधर्मिणः ।

पापीयसीं नृणां वार्ता क्रोधलोभानृतात्मनाम् ॥ ३ ॥

### शब्दार्थ

कालस्य—शाश्वत समय की; च—भी; गतिम्—दिशा; रौद्राम्—भयानक; विपर्यस्त—विपरीत; ऋतु—मौसम की; धर्मिणः—नियमितताएँ; पापीयसीम्—पापी; नृणाम्—मनुष्य की; वार्ताम्—जीविका का साधन; क्रोध—क्रोध; लोभ—लोभ; अनृत—झूठ; आत्मनाम्—लोगों का।

उन्होंने देखा कि सनातन काल की गति बदल गई है और यह अत्यन्त भयावह था। ऋतु-सम्बन्धी नियमितताओं में व्यतिक्रम हो रहे थे। सामान्य लोग अत्यन्त लालची, क्रोधी तथा धोखेबाज हो गये थे। वे देख रहे थे कि वे सभी जीविका के अनुचित साधन अपना रहे थे।

**तात्पर्य :** जब सभ्यता का सम्बन्ध पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् के प्रेम से टूट जाता है, तो ऋतु की नियमितता में परिवर्तन, जीविका के अनुचित साधन, लोभ, क्रोध तथा धोखाधड़ी जैसे लक्षणों का प्राधान्य हो जाता है। ऋतु-सम्बन्धी नियमितता के परिवर्तन का अर्थ है, एक ऋतु के समय दूसरी ऋतु के लक्षणों का प्रकट होना। उदाहरणार्थ, वर्षाऋतु, शरदऋतु में चली जाय या एक ऋतु में फूलने-फलने की क्रिया दूसरी ऋतु में होने लगे। ईश्वरविहीन मनुष्य अनिवार्यतः लालची, क्रोधी तथा धोखेबाज होता है। ऐसा व्यक्ति किसी भी साधन से अपनी जीविका चला सकता है चाहे वह साधन उचित हो या

अनुचित। महाराज युधिष्ठिर के राज्यकाल में ध्यान खींचने वाली बात यह थी कि उपर्युक्त सारे लक्षणों का अभाव था। लेकिन जब महाराज युधिष्ठिर को अपने राज्य के दैवी वातावरण में यत्किंचित् परिवर्तन का अनुभव होने लगा, तो वे चकित हो गए और उन्हें तुरन्त आशंका हुई कि भगवान् अप्रकट हो गये हैं। जीविका के अनुचित साधनों का अर्थ है, अपने वृत्तिपरक कर्म से हटना। हर एक के लिए, चाहे वह ब्राह्मण हो या क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र, कुछ कर्म नियत हैं, किन्तु यदि कोई इन कर्मों को न करके, अन्यो के कर्म को अपना कर्म घोषित करते हुए उसे अपनाता है, तो वह अनुचित कर्तव्य का पालन करता है। जब मनुष्य के समक्ष उच्चतर जीवन-उद्देश्य नहीं होता और वह सोचता है कि उसका कुछ वर्षों का भौतिक जीवन ही सब कुछ है, तो मनुष्य सम्पत्ति तथा शक्ति के लिए अत्यधिक लोभी बन जाता है। अज्ञान ही मानव समाज की सारी विसंगतियों का कारण है और इस अज्ञान को हटाने के लिए, विशेष रूप से इस अधोगति के युग में, श्रीमद्भागवत रूपी प्रबल सूर्य अपना प्रकाश वितरित करने के लिए उपलब्ध है।

जिह्वाप्रायं व्यवहृतं शाठ्यमिश्रं च सौहृदम् ।

पितृमातृसुहृद्भ्रातृदम्पतीनां च कल्कनम् ॥ ४ ॥

### शब्दार्थ

जिह्वा-प्रायम्—धोखा देना; व्यवहृतम्—समस्त सामान्य लेन-देन के कार्यों में; शाठ्य—कपट; मिश्रम्—अपमिश्रित; च—तथा; सौहृदम्—मैत्रीपूर्ण शुभचिन्तकों से सम्बन्धित; पितृ—पिता; मातृ—माता-सम्बन्धी; सुहृत्—शुभचिन्तक; भ्रातृ—निजी भाई; दम्-पतीनाम्—पति-पत्नी-विषयक; च—भी; कल्कनम्—पारस्परिक कलह।

सारे सामान्य लेन-देन, यहाँ तक कि मित्रों के बीच के व्यवहार तक, कपट के कारण दूषित हो गये थे। पारिवारिक मामलों में पिता, माता तथा पुत्रों के बीच, शुभचिन्तकों के बीच तथा भाई-भाई के बीच सदैव गलतफहमी होती थी। यहाँ तक कि पति तथा पत्नी के बीच भी सदैव तनाव तथा झगड़ा होता रहता था।

तात्पर्य : बद्धजीव में चार दुर्गुण पाये जाते हैं—त्रुटियाँ करना, मूर्खता, असमर्थता तथा वंचकता (ठगी)। ये अपूर्णता के लक्षण हैं और इन चारों में से अन्यो को ठगने की प्रवृत्ति की प्रधानता रहती है। यह ठगी बद्धजीवों में इसलिए आती है, क्योंकि वे प्रकृति पर प्रभुता जताने की अप्राकृतिक इच्छा से लिस होकर भौतिक जगत् में फँसे हुए हैं। शुद्ध अवस्था में जीव नियमों द्वारा बद्ध नहीं रहता,

क्योंकि अपनी शुद्ध अवस्था में उसे यह ज्ञान रहता है कि जीव परम पुरुष के अधीन है और इस तरह अधीन बने रहना उसके हित में है, बजाय इसके कि वह परमेश्वर की सम्पत्ति पर झूठी प्रभुता जताये। बद्ध अवस्था में यदि उसे सर्वस्व मिल जाए जो उसे कभी मिलनेवाला नहीं हैं, तो भी वह तुष्ट नहीं होता, अतएव वह सभी प्रकार की ठगी करने लगता है, यहाँ तक कि वह अपने निकटतम प्रिय सम्बन्धियों को भी ठगता है। ऐसी असंतोषजनक स्थिति में पिता तथा पुत्र या पति तथा पत्नी के बीच भी मेल नहीं रह पाता। लेकिन इन सभी विरोधी कठिनाइयों को एक विधि से दूर किया जा सकता है, और वह है भगवान् की भक्तिमय सेवा। पाखण्डमय संसार को भगवान् की भक्तिमय सेवा की प्रतिक्रिया द्वारा ही रोका जा सकता है, अन्य किसी विधि से नहीं। जब महाराज युधिष्ठिर ने इस प्रकार की विषमता देखी, तो उन्होंने अनुमान लगा लिया कि इस धरती से भगवान् का तिरोभाव हो चुका है।

निमित्तान्यत्यरिष्टानि काले त्वनुगते नृणाम् ।

लोभाद्यधर्मप्रकृतिं दृष्ट्वावाचानुजं नृपः ॥ ५ ॥

### शब्दार्थ

निमित्तानि—कारण; अति—गम्भीर; अरिष्टानि—अशुभ लक्षण, अपशकुन; काले—कालक्रम में; तु—लेकिन; अनुगते—चला जाना; नृणाम्—मानव जाति का; लोभ-आदि—यथा लालच; अधर्म—अधर्म; प्रकृतिम्—आदत्तें; दृष्ट्वा—देख कर; उवाच—कहा; अनुजम्—छोटे भाई से; नृपः—राजा ने।

कालक्रम में ऐसा हुआ कि लोग लोभ, क्रोध, गर्व इत्यादि के अभ्यस्त हो गये। महाराज युधिष्ठिर ने इन सब अपशकुनों को देखकर अपने छोटे भाई से कहा।

तात्पर्य : जब समाज में लोभ, क्रोध, अधर्म तथा दम्भ जैसे अमानवीय लक्षणों का प्राधान्य हो उठा, तो महाराज युधिष्ठिर जैसे धर्मात्मा राजा अत्यन्त क्षुब्ध हो उठे। इस कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि पतित समाज के ये सारे लक्षण उस काल के लोगों को अज्ञात थे और कलियुग के आगमन के साथ इनका अनुभव किया जाना उनके लिए आश्चर्यजनक था।

युधिष्ठिर उवाच

सम्प्रेषितो द्वारकायां जिष्णुर्बन्धुदिदृक्षया ।

ज्ञातुं च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम् ॥ ६ ॥

## शब्दार्थ

युधिष्ठिरः उवाच—महाराज युधिष्ठिर ने कहा; सम्प्रेषितः—गया हुआ है; द्वारकायाम्—द्वारका; जिष्णुः—अर्जुन; बन्धु—मित्रों से; दिदृक्षया—मिलने के लिए; ज्ञातुम्—जानने के लिए; च—भी; पुण्य-श्लोकस्य—भगवान् का; कृष्णस्य—श्रीकृष्ण का; च—तथा; विचेष्टितम्—कार्यक्रम।

महाराज युधिष्ठिर ने अपने छोटे भाई भीमसेन से कहा : मैंने अर्जुन को द्वारका भेजा था कि वह अपने मित्रों से भेंट कर आये और भगवान् श्रीकृष्ण से उनका कार्यक्रम जानता आये।

गताः सप्ताधुना मासा भीमसेन तवानुजः ।

नायाति कस्य वा हेतोर्नाहं वेदेदमञ्जसा ॥ ७ ॥

## शब्दार्थ

गताः—बीत चुके; सप्त—सात; अधुना—इस समय तक; मासाः—महीने; भीमसेन—हे भीमसेन; तव—तुम्हारा; अनुजः—छोटा भाई; न—नहीं; आयाति—आता है; कस्य—किसलिए; वा—अथवा; हेतोः—कारण; न—नहीं; अहम्—मैं; वेद—जानता हूँ; इदम्—यह; अञ्जसा—वास्तव में।

जब से वह गया है, तब से सात मास बीत चुके हैं, फिर भी वह लौटा नहीं। मुझे ठीक से पता नहीं है कि वहाँ क्या हो रहा है।

अपि देवर्षिणादिष्टः स कालोऽयमुपस्थितः ।

यदात्मनोऽङ्गमाक्रीडं भगवानुत्सिसृक्षति ॥ ८ ॥

## शब्दार्थ

अपि—क्या; देव-ऋषिणा—देवर्षि ( नारद ) द्वारा; आदिष्टः—आदेश दिया गया; सः—वह; कालः—शाश्वत समय; अयम्—यह; उपस्थितः—आ चुका है; यदा—जब; आत्मनः—अपने आप; अङ्गम्—अंश; आक्रीडम्—प्राकट्य; भगवान्—भगवान्; उत्सिसृक्षति—छोड़ने जा रहे हैं।

क्या वे अपनी मर्त्यलोक की लीलाओं को छोड़ने जा रहे हैं, जैसा देवर्षि नारद ने इंगित किया था? क्या वह समय आ भी चुका है?

तात्पर्य : जैसा हम कई बार बतला चुके हैं, पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के कई पूर्ण अंश हैं और इनमें से यद्यपि सभी समान रूप से शक्तिमान हैं, किन्तु वे भिन्न-भिन्न कार्य करते हैं। *भगवद्गीता* में भगवान् के कई तरह के कथन हैं और इनमें से प्रत्येक कथन विभिन्न अंशों या अंशांशों के लिए है। उदाहरणार्थ, *भगवद्गीता* में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

“हे भारत, जब जब भी और जहाँ जहाँ भी, धर्म का पतन तथा अधर्म का प्राधान्य होने लगता है, तब-तब मैं अवतरित होता हूँ।” ( *भगवद्गीता* ४.७)

“भक्तजनों का उद्धार करने, दुष्टों का विनाश करने तथा धर्म के सिद्धान्तों की फिर से स्थापना करने के लिए मैं हर युग में प्रकट होता हूँ।” ( *भगवद्गीता* ४.८)

“यदि मैं कर्म न करूँ, तो सारे लोग कुपथगामी हो जाँय। तब मैं अवांछित जन-समुदाय (वर्णसंकर) को उत्पन्न करने का कारण बनूँगा और इस तरह सम्पूर्ण प्राणियों की शान्ति का विनाशकर्ता बनूँगा।” ( *भगवद्गीता* ३.२४)

“महापुरुष जो-जो आचरण करता है, सामान्य लोग उसी का अनुसरण करते हैं। वह अपने अनुसरणीय कार्यों से जो भी आदर्श प्रस्तुत करता है, संपूर्ण विश्व उसी का अनुगमन करता है।” ( *भगवद्गीता* ३.२१)

उपर्युक्त सारे कथन भगवान् के विभिन्न अंशों पर लागू होते हैं—यथा संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा नारायण—इन सब दिव्य अंशों में वे स्वयं ही हैं। फिर भी श्रीकृष्ण के रूप में भगवान् अपने विभिन्न कोटि के भक्तों से विभिन्न प्रकार की दिव्यानुभूति का आदान-प्रदान करते हैं। तो भी भगवान् कृष्ण अपने मूल रूप में, ब्रह्मा के प्रत्येक चौबीस घण्टों में (या ८,६४,००,००,००० सौर वर्षों के बाद) प्रत्येक ब्रह्माण्ड में एक बार प्रकट होते हैं और उनकी सारी दिव्य लीलाएँ प्रत्येक ब्रह्माण्ड में क्रमशः दिखलाई पड़ती हैं। किन्तु निपट अनजान व्यक्ति के लिए, भगवान् कृष्ण, भगवान् वासुदेव आदि के कार्य जटिल समस्याएँ बने रहते हैं। स्वयं भगवान् तथा भगवान् के दिव्य शरीर में कोई भी अन्तर नहीं है। विभिन्न अंश तरह-तरह के कार्य सम्पन्न करते हैं। किन्तु जब भगवान्, सशरीर श्रीकृष्ण के रूप में प्रकट होते हैं, तब उनके अन्य अंश भी उनकी अचिन्त्य शक्ति *योगमाया* से उनके साथ हो लेते हैं। इस प्रकार वृन्दावन के भगवान् कृष्ण मथुरा या द्वारका के कृष्ण से भिन्न हैं। इसी तरह कृष्ण का *विराट* रूप भी उनकी अचिन्त्य शक्ति के द्वारा उनसे भिन्न है। कुरुक्षेत्र के युद्धस्थल में प्रदर्शित विराट रूप उनके रूप की भौतिक अवधारणा है। अतएव यह समझ लेना चाहिए कि जब बहेलिया के तीर-कमान से भगवान् कृष्ण बाह्य दृष्टि से मारे गये, तब भगवान् अपना तथाकथित भौतिक शरीर इसी संसार में छोड़ते गये। भगवान् तो *कैवल्य* हैं और उनके लिए पदार्थ तथा आत्मा में कोई अन्तर नहीं है,

क्योंकि उन्हीं से प्रत्येक वस्तु उत्पन्न हुई है। अतएव उनके द्वारा एक शरीर को त्यागना या दूसरा शरीर ग्रहण करने का अर्थ यह नहीं है कि वे सामान्य जीव जैसे हैं। ऐसे सारे कार्यकलाप उनकी अचिन्त्य शक्ति के कारण एक ही साथ एक तथा भिन्न-भिन्न हैं। जब महाराज युधिष्ठिर उनके अन्तर्धान होने की सम्भावना से शोकाकुल थे, तो यह अपने घनिष्ठ मित्र के अन्तर्धान होने पर शोक करने की प्रथा स्वरूप था, लेकिन वास्तविकता तो यह है कि भगवान् कभी भी अपना दिव्य शरीर नहीं त्यागते, जैसाकि अल्पज्ञानी लोग भ्रमवश सोचते हैं। *भगवद्गीता* में स्वयं भगवान् ने ऐसे अल्पज्ञों की भर्त्सना की है और उन्हें मूढ़ कहा गया है। भगवान् के शरीर-त्याग का अर्थ यह हुआ कि उन्होंने पुनः अपने अंशों को अपने-अपने दिव्य धामों में छोड़ दिया, जिस तरह इस संसार में उन्होंने अपना *विराट्* रूप छोड़ा था।

यस्मान्नः सम्पदो राज्यं दाराः प्राणाः कुलं प्रजाः ।

आसन्सपत्नविजयो लोकाश्च यदनुग्रहात् ॥ ९ ॥

### शब्दार्थ

यस्मात्—जिससे; नः—हमारा; सम्पदः—ऐश्वर्य; राज्यम्—राज्य; दाराः—पत्नियाँ; प्राणाः—जीवनाधार; कुलम्—वंश; प्रजाः—प्रजागण; आसन्—सम्भव हुए; सपत्न—प्रतियोगी; विजयः—जीतकर; लोकाः—उच्च लोकों में भावी निवास; च—तथा; यत्—जिसके; अनुग्रहात्—अनुग्रह से।

केवल उन्हीं से हमारा सारा राजसी ऐश्वर्य, अच्छी पत्नियाँ, जीवन, सन्तान, प्रजा के ऊपर नियंत्रण, शत्रुओं पर विजय तथा उच्चलोकों में भावी निवास, सभी कुछ सम्भव हो सका। यह सब हम पर उनकी अहैतुकी कृपा के कारण है।

**तात्पर्य :** भौतिक सम्पन्नता में अच्छी पत्नी, अच्छा घर, पर्याप्त भूमि, अच्छी सन्तानें, राजसी पारिवारिक सम्बन्ध, प्रतियोगियों पर विजय तथा पुण्य कर्म के द्वारा भौतिक सुविधाओं की बेहतर व्यवस्था के लिए उच्चतर दैवी लोकों में निवासस्थान की प्राप्ति सम्मिलित हैं। ये सुविधाएँ न केवल खुद के कठोर श्रम से या अनुचित साधनों से प्राप्त की जाती हैं, अपितु भगवान् की कृपा से प्राप्त होती हैं। किसी के निजी उद्यम से अर्जित सम्पन्नता भी भगवान् की कृपा पर ही निर्भर करती है। भगवान् के आशीर्वाद के साथ-साथ निजी श्रम तो होना ही चाहिए, किन्तु भगवान् के आशीर्वाद के बिना केवल श्रम से ही किसी को सफलता नहीं मिलती। कलियुग का आधुनिकता-प्रिय व्यक्ति निजी उद्यम में

विश्वास करता है और परमेश्वर के आशीर्वाद को नकारता है। यहाँ तक कि भारत के एक महान् संन्यासी ने शिकागो में दिये गये अपने भाषण में परमेश्वर के आशीर्वादों का विरोध किया। लेकिन जहाँ तक वैदिक शास्त्रों का सम्बन्ध है, जैसा कि *श्रीमद्भागवत* के पृष्ठों में देखने में आता है, सभी प्रकार की सफलता का अन्तिम अधिकार परमेश्वर के हाथों में रहता है। महाराज युधिष्ठिर अपनी निजी सफलता के प्रसंग में इस सत्य को स्वीकार करते हैं। अतएव मनुष्य के लिए करने योग्य यही होगा कि वह महान् राजा एवं भगवान् के भक्त के पदचिह्नों का अनुसरण करे, जिससे उसका जीवन पूर्णतया सफल बने। यदि भगवान् की मर्जी के बिना कोई सफलता प्राप्त कर सकता था, तो कोई भी चिकित्सक (वैद्य) अपने रोगी को चंगा करने में असफल न होता। आधुनिकतम चिकित्सक के द्वारा रोगी की उन्नत चिकित्सा होने पर भी उसकी मृत्यु होती है, किन्तु कभी-कभी अत्यन्त आशाहीन रोगी बिना किसी उपचार के आश्चर्यजनक रूप में चंगा हो जाता है। अतएव निष्कर्ष यह निकला कि सारी घटनाएँ, चाहे अच्छी हों या बुरी, भगवान् की मर्जी के कारण ही घटती हैं। किसी भी सफल व्यक्ति को अपनी सफलता के लिए भगवान् के प्रति कृतज्ञता का अनुभव करना चाहिए।

पश्योत्पातान्नरव्याघ्र दिव्यान् भौमान् सदैहिकान् ।

दारुणान् शंसतोऽदूराद्भयं नो बुद्धिमोहनम् ॥ १० ॥

### शब्दार्थ

पश्य—जरा देखो तो; उत्पातान्—उत्पातों को; नर-व्याघ्र—हे बाघ-सदृश बलवाले मनुष्य; दिव्यान्—आकाश की या ग्रहों के प्रभाव से घटनेवाली; भौमान्—पृथ्वी पर की घटनाएँ; स-दैहिकान्—शरीर तथा मन की घटनाएँ; दारुणान्—अत्यन्त खतरनाक; शंसतः—सूचित करनेवाली; अदूरात्—निकट के भविष्य में; भयम्—भय, खतरा; नः—हमारी; बुद्धि—बुद्धि को; मोहनम्—मोहग्रस्त करनेवाला।

हे पुरुषव्याघ्र, जरा देखो तो कि दैवी प्रभावों, पृथ्वी की प्रतिक्रियाओं तथा शारीरिक वेदनाओं के कारण उत्पन्न होने वाली कितनी खतरनाक आपदाएँ हमारी बुद्धि को मोहित करके निकट के भविष्य में आने वाले खतरे की सूचना दे रही हैं।

तात्पर्य : सभ्यता की भौतिक उन्नति का अर्थ है तीन प्रकार की आपदाओं की प्रगति, जो दैवी प्रभावों के कारण, पृथ्वी की प्रतिक्रियाओं के कारण एवं शरीर या मन की वेदनाओं के कारण हैं। नक्षत्रों के दैविक प्रभाव से अनेक विपत्तियाँ आती हैं—जैसे अत्यधिक गर्मी, सर्दी, वर्षा या सूखा तथा



इनके बाद के प्रभाव से दुर्भिक्ष, रोग तथा महामारी आती हैं। इन सबका सम्मिलित फल होता है, शारीरिक तथा मानसिक क्लेश। मानवकृत भौतिक विज्ञान इन तीन प्रकार की आपदाओं का प्रतिकार करने के लिए कुछ भी नहीं कर सकता। ये सब परमेश्वर की अध्यक्षता में उच्चतर शक्ति माया द्वारा, दिया जाने वाला दण्ड हैं। अतएव भक्तिमय सेवा द्वारा भगवान् के साथ हमारा निरन्तर सम्पर्क हमें राहत प्रदान कर सकता है और हम विचलित हुए बिना हमारे मनुष्योचित कर्तव्यों का पालन कर सकते हैं। फिर भी असुर जन जो ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास नहीं करते, वे इन तीनों प्रकार की आपदाओं का सामना करने के लिए अपनी खुद की योजनाएँ बनाते हैं, अतएव वे हर बार विफल होते हैं। *भगवद्गीता* (७.१४) में स्पष्ट कहा गया है कि तीनों भौतिक गुणों के बाह्यकारी प्रभावों के कारण भौतिक शक्ति की प्रतिक्रिया को कभी जीता नहीं जा सकता है। इन्हें वे ही जीत सकते हैं, जिन्होंने भक्ति-भाव से भगवान् के चरणकमलों की शरण ग्रहण कर ली है।

ऊर्वक्षिबाहवो मह्यं स्फुरन्त्यङ्ग पुनः पुनः ।

वेपथुश्चापि हृदये आरादास्यन्ति विप्रियम् ॥ ११ ॥

### शब्दार्थ

ऊरु—जाँघें; अक्षि—आँखें; बाहवः—भुजाएँ; मह्यम्—मेरे; स्फुरन्ति—फड़कते हैं; अङ्ग—शरीर का बाँया भाग; पुनः पुनः—बारम्बार; वेपथुः—धड़कनें; च—भी; अपि—निश्चय ही; हृदये—हृदय में; आरात्—डर के मारे; दास्यन्ति—सूचित कर रहे हैं; विप्रियम्—अशुभ, अनिष्ट।

मेरे शरीर का बाँयाँ भाग, मेरी जाँघें, भुजाएँ तथा आँखें बारम्बार फड़क रही हैं। भय से मेरा हृदय धड़क रहा है। ये सब अनिष्ट घटना को सूचित करने वाले हैं।

**तात्पर्य :** यह भौतिक अस्तित्व अनिष्टों से भरा हुआ है। जिन वस्तुओं को हम नहीं चाहते, वे ही किसी उच्चतर शक्ति द्वारा हम पर लाद दी जाती हैं और हम यह नहीं देख पाते कि ये अनिष्ट प्रकृति के तीनों गुणों के नियंत्रण में हैं। जब किसी मनुष्य की जाँघें, भुजाएँ तथा आँखें लगातार फड़कें, तो यह समझ लेना चाहिए कि कुछ अनिष्ट होनेवाला है। इन सब अनिष्टों की तुलना दावगिन से की जाती है। जंगल में कोई आग लगाने नहीं जाता, फिर भी यह आग स्वतः लग जाती है, जिससे जंगल के जीवों को अकल्पनीय विपत्तियाँ सहनी पड़ती हैं। ऐसी आग को किसी भी मानवीय प्रयास से नहीं बुझाया जा सकता। यह अग्नि केवल भगवान् की कृपा से ही बुझ सकती है, जो अग्नि का शमन करने के लिए

बादलों को भेजते हैं। इसी प्रकार कितनी भी योजनाएँ क्यों न बनाई जाँय, जीवन की अप्रिय घटनाओं को रोका नहीं जा सकता। ऐसी विपत्तियाँ केवल भगवत्कृपा से ही दूर की जा सकती हैं, जिसके निमित्त भगवान् अपने प्रामाणिक प्रतिनिधि को भेजकर मनुष्य को प्रबुद्ध करते हैं और विपत्तियों से बचाते हैं।

शिवैषोद्यन्तमादित्यमभिरौत्यनलानना ।

मामङ्ग सारमेयोऽयमभिरेभत्यभीरुवत् ॥ १२ ॥

### शब्दार्थ

शिवा—सियारिन; एषा—यह; उद्यन्तम्—उगता; आदित्यम्—सूर्य को; अभि—की ओर; रौति—रोती हुई; अनल—अग्नि; आनना—मुँह; माम्—मुझको; अङ्ग—हे भीम; सारमेयः—कुत्ता; अयम्—यह; अभिरेभति—भूकता है; अभीरु-वत्—भयरहित।

हे भीम, जरा देखो तो यह सियारिन किस तरह उगते हुए सूर्य को देखकर रो रही है और अग्नि उगल रही है और यह कुत्ता किस तरह निर्भय होकर, मुझ पर भूक रहा है।

तात्पर्य : ये कतिपय अपशकुन हैं, जो निकट के भविष्य में अनिष्ट का संकेत देनेवाले हैं।

शस्ताः कुर्वन्ति मां सव्यं दक्षिणं पशवोऽपरे ।

वाहांश्च पुरुषव्याघ्र लक्षये रुदतो मम ॥ १३ ॥

### शब्दार्थ

शस्ताः—गाय जैसे उपयोगी पशु; कुर्वन्ति—रखते हैं; माम्—मुझको; सव्यम्—बाई ओर; दक्षिणम्—प्रदक्षिणा करते हुए; पशवः अपरे—अन्य पशु, यथा गधे; वाहान्—घोड़े (वाहक); च—भी; पुरुष-व्याघ्र—हे पुरुषों में बाघ; लक्षये—मैं देख रहा हूँ; रुदतः—रोते हुए; मम—मेरे।

हे भीमसेन, हे पुरुष-व्याघ्र, अब गाय जैसे उपयोगी पशु मेरी बाई ओर से निकले जा रहे हैं और गधे जैसे निम्न पशु, मेरी प्रदक्षिणा कर रहे हैं। मेरे घोड़े मुझे देखकर रोते प्रतीत होते हैं।

मृत्युदूतः कपोतोऽयमुलूकः कम्पयन् मनः ।

प्रत्युलूकश्च कुह्वानैर्विश्वं वै शून्यमिच्छतः ॥ १४ ॥

## शब्दार्थ

मृत्यु—मृत्यु का; दूतः—दूत; कपोतः—कबूतर; अयम्—यह; उल्लूकः—उल्लू; कम्पयन्—कँपाती हुई; मनः—मन;  
प्रत्युल्लूकः—उल्लुओं के प्रतियोगी, कौवे; च—तथा; कुह्वनैः—चीख; विश्वम्—ब्रह्माण्ड; वै—अथवा; शून्यम्—शून्य;  
इच्छतः—चाहते हैं।

जरा देखो तो! यह कबूतर मानो मृत्यु का दूत हो। उल्लुओं तथा उनके प्रतिद्वन्दी कौवों की चीख मेरे हृदय को दहला रही है। ऐसा प्रतीत होता है मानो वे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को शून्य बना देना चाहते हैं।

धूम्रा दिशः परिधयः कम्पते भूः सहाद्रिभिः ।

निर्घातश्च महांस्तात साकं च स्तनयित्नुभिः ॥ १५ ॥

## शब्दार्थ

धूम्राः—धुँधली; दिशः—सभी दिशाएँ; परिधयः—मंडल; कम्पते—काँपती हुई; भूः—पृथ्वी; सह अद्रिभिः—पर्वतों समेत;  
निर्घातः—आकाश से वज्रपात; च—भी; महान्—विशाल; तात—हे भीम; साकम्—सहित; च—भी; स्तनयित्नुभिः—बिना बादल के गर्जन।

जरा देखो तो, किस तरह धुँआ आकाश को घेरे हुए है। ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो पृथ्वी तथा पर्वत काँप रहे हों। बिना बादलों की यह गर्जन तो जरा सुनो और आकाश से गिरते ब्रजपात को तो देखो!

वायुर्वाति खरस्पर्शो रजसा विसृजंस्तमः ।

असृग् वर्षन्ति जलदा बीभत्समिव सर्वतः ॥ १६ ॥

## शब्दार्थ

वायुः—वायु; वाति—बह रही है; खर-स्पर्शः—तेजी से; रजसा—धूल से; विसृजन्—उत्पन्न करते; तमः—अँधेरा; असृक्—रक्त; वर्षन्ति—बरसा रहे हैं; जलदाः—बादल; बीभत्सम्—भयानक; इव—सदृश; सर्वतः—सर्वत्र।

वायु तेजी से बह रही है और वह सर्वत्र धूल बिखरा कर अँधेरा उत्पन्न कर रही है। बादल सर्वत्र रक्तिम आपदाओं की वर्षा कर रहे हैं।

सूर्य हतप्रभं पश्य ग्रहमर्द मिथो दिवि ।

ससङ्कुलैर्भूतगणैर्ज्वलिते इव रोदसी ॥ १७ ॥

## शब्दार्थ

सूर्यम्—सूर्य को; हत-प्रभम्—क्षीण पड़ती किरणों वाले; पश्य—जरा देखो; ग्रह-मर्दम्—तारों की भिड़न्त; मिथः—परस्पर; दिवि—आकाश में; स-सङ्कुलैः—एक दूसरे से मिलकर; भूत-गणैः—जीवों द्वारा; ज्वलिते—जलाया जाकर; इव—मानो; रोदसी—रो रहा हो।

सूर्य की किरणों मन्द पड़ रही हैं और तारे परस्पर भिड़ रहे प्रतीत हो रहे हैं। भ्रमित जीव जलते हुए तथा रोते प्रतीत हो रहे हैं।

नद्यो नदाश्च क्षुभिताः सरांसि च मनांसि च ।

न ज्वलत्यग्निराज्येन कालोऽयं किं विधास्यति ॥ १८ ॥

## शब्दार्थ

नद्यः—नदियाँ; नदाः च—तथा सहायक नदियाँ; क्षुभिताः—सभी विक्षुब्ध; सरांसि—जलाशय; च—तथा; मनांसि—मन; च—भी; न—नहीं; ज्वलति—जलती है; अग्निः—अग्नि; आज्येन—घी की सहायता से; कालः—काल, समय; अयम्—यह कितना असामान्य है; किम्—क्या; विधास्यति—होनेवाला है।

नदियाँ, नाले, तालाब, जलाशय तथा मन सभी विक्षुब्ध हैं। घी से अग्नि नहीं जल रही है, यह कैसा असामान्य समय है? आखिर क्या होने वाला है?

न पिबन्ति स्तनं वत्सा न दुह्यन्ति च मातरः ।

रुदन्त्यश्रुमुखा गावो न हृष्यन्त्यृषभा व्रजे ॥ १९ ॥

## शब्दार्थ

न—नहीं; पिबन्ति—पीते हैं; स्तनम्—थन को; वत्साः—बछड़े; न—नहीं; दुह्यन्ति—दुहने देती हैं; च—भी; मातरः—गाएँ; रुदन्ति—रोती हैं; अश्रु-मुखाः—आँसुओं से युक्त मुँह; गावः—गाएँ; न—नहीं; हृष्यन्ति—प्रसन्न होते हैं; ऋषभाः—बैल; व्रजे—चरागाह में।

बछड़े न तो गौवों के थनों में मुँह लगा रहे हैं, न गौवें दूध देती हैं। वे आँखों में आँसू भरे खड़ी-खड़ी रम्भा रही हैं और बैलों को चरागाहों में कोई प्रसन्नता नहीं हो रही है।

दैवतानि रुदन्तीव स्विद्यन्ति ह्युच्चलन्ति च ।

इमे जनपदा ग्रामाः पुरोद्यानाकराश्रमाः ।

भ्रष्टश्रियो निरानन्दाः किमघं दर्शयन्ति नः ॥ २० ॥

## शब्दार्थ

दैवतानि—मन्दिरों के अर्चाविग्रह; रुदन्ति—रोते प्रतीत हो रहे हैं; इव—सदृश; स्विद्यन्ति—पसीज रहे हैं; हि—निश्चय ही; उच्चलन्ति—मानो बाहर जा रहे हों; च—भी; इमे—ये; जन-पदाः—शहर, नगर; ग्रामाः—गाँव; पुर—कस्बे; उद्यान—बगीचे;

आकर—खानें; आश्रमाः—कुटिया.; भ्रष्ट—रहित; श्रियः—सौन्दर्य से; निरानन्दाः—समस्त आनन्द से विहीन; किम्—किस तरह की; अघम्—आपत्तियाँ; दर्शयन्ति—प्रकट होने वाली हैं; नः—हम पर।

मन्दिर में अर्चाविग्रह रोते, शोक करते तथा पसीजते प्रतीत हो रहे हैं। ऐसा लगता है कि वे प्रयाण करनेवाले हैं। सारे नगर, ग्राम, कस्बे, बगीचे, खानें तथा आश्रम अब सौन्दर्यविहीन तथा समस्त आनन्द से रहित हैं। मैं नहीं जानता कि हम पर किस तरह की विपत्तियाँ आनेवाली हैं।

मन्य एतैर्महोत्पातैर्नूनं भगवतः पदैः ।

अनन्यपुरुषश्रीभिर्हीना भूर्हतसौभगा ॥ २१ ॥

### शब्दार्थ

मन्ये—मैं मान लेता हूँ; एतैः—इन सबसे; महा—महान्; उत्पातैः—उत्पातों से; नूनम्—के अभाव में; भगवतः—भगवान् का; पदैः—पाँव के तलवे में चिह्न; अनन्य—असामान्य; पुरुष—परम पुरुष का; श्रीभिः—शुभ चिह्नों से; हीना—विहीन; भूः—पृथ्वी; हत-सौभगा—सौभाग्य से रहित।

मैं सोचता हूँ कि पृथ्वी पर की ये सारी उथल-पुथल विश्व के सौभाग्य की किसी बहुत बड़ी हानि को सूचित करनेवाले हैं। संसार भाग्यशाली था कि उस पर भगवान् के चरणकमलों के पदचिह्न अंकित हुए। किन्तु ये लक्षण यह सूचित कर रहे हैं कि अब आगे ऐसा नहीं रह पाएगा।

इति चिन्तयतस्तस्य दृष्टारिष्टेन चेतसा ।

राज्ञः प्रत्यागमद् ब्रह्मन् यदुपुर्याः कपिध्वजः ॥ २२ ॥

### शब्दार्थ

इति—इस तरह; चिन्तयतः—अपने आप सोचते हुए; तस्य—उनका; दृष्टा—देखकर; अरिष्टेन—अपशकुन से; चेतसा—मन से; राज्ञः—राजा को; प्रति—वापस; आगमत्—आया; ब्रह्मन्—हे ब्रह्माण; यदु-पुर्याः—यदुओं के राज्य से; कपि-ध्वजः—अर्जुन।

हे ब्राह्मण शौनक, जब महाराज युधिष्ठिर उस समय पृथ्वी पर इन अशुभ लक्षणों को देख रहे थे और अपने मन में इस प्रकार सोच रहे थे, तभी अर्जुन यदुओं की पुरी (द्वारका) से वापस आ गये।

तं पादयोर्निपतितमयथापूर्वमातुरम् ।

अधोवदनमब्बिन्दून् सृजन्तं नयनाब्जयोः ॥ २३ ॥

## शब्दार्थ

तम्—उसको ( अर्जुन को ); पादयोः—पाँवों पर; निपतितम्—गिर कर; अयथा-पूर्वम्—अपूर्व रीति से; आतुरम्—खिन्न; अधः-वदनम्—मुख नीचा किये; अप्-बिन्दून्—जल के बिन्दु; सृजन्तम्—उत्पन्न करते हुए; नयन-अब्जयोः—कमल-जैसे नेत्रों से।

जब उसने राजा के चरणों पर नमन किया, तो राजा ने देखा कि उनकी निराशा अभूतपूर्व थी। उनका सिर नीचे झुका था और उनके कमल-नेत्रों से आँसू झर रहे थे।

विलोक्योद्विग्नहृदयो विच्छायमनुजं नृपः ।

पृच्छति स्म सुहृन्मध्ये संस्मरन्नारदेरितम् ॥ २४ ॥

## शब्दार्थ

विलोक्य—देखकर; उद्विग्न—चिन्तित; हृदयः—हृदय; विच्छायम्—पीला चेहरा; अनुजम्—अर्जुन को; नृपः—राजा ने; पृच्छति स्म—पूछा; सुहृत्—मित्रों के; मध्ये—मध्य में; संस्मरन्—स्मरण करते हुए; नारद—नारदमुनि द्वारा; ईरितम्—सूचित।

हृदय की उद्विग्नताओं के कारण अर्जुन को पीला हुआ देखकर, राजा ने नारदमुनि द्वारा बताये गये संकेतों का स्मरण करते हुए, मित्रों के मध्य में ही उनसे पूछा।

युधिष्ठिर उवाच

कच्चिदानर्तपुर्या नः स्वजनाः सुखमासते ।

मधुभोजदशार्हार्हसात्वतान्धकवृष्णयः ॥ २५ ॥

## शब्दार्थ

युधिष्ठिरः उवाच—युधिष्ठिर ने कहा; कच्चित्—क्या; आनर्त-पुर्याम्—द्वारका में; नः—हमारे; स्व-जनाः—सम्बन्धी; सुखम्—सुखपूर्वक; आसते—दिन बिता रहे हैं; मधु—मधु; भोज—भोज; दशार्ह—दशार्ह; आर्ह—आर्ह; सात्वत—सात्वत; अन्धक—अन्धक; वृष्णयः—वृष्णि परिवार के।

महाराज युधिष्ठिर ने कहा : मेरे भाई, मुझे बताओ कि हमारे मित्र तथा सम्बन्धी, यथा मधु, भोज, दशार्ह, आर्ह, सात्वत, अन्धक तथा यदुवंश के सारे सदस्य, अपने दिन सुख से बिता रहे हैं न?

शूरो मातामहः कच्चित्स्वस्त्यास्ते वाथ मारिषः ।

मातुलः सानुजः कच्चित्कुशल्यानकदुन्दुभिः ॥ २६ ॥

## शब्दार्थ

शूरः—शूरसेन; मातामहः—नाना; कच्चित्—क्या; स्वस्ति—सभी शुभ; आस्ते—अपने दिन बिता रहे हैं; वा—अथवा; अथ—अतएव; मारिषः—आदरणीय; मातुलः—मामा; स-अनुजः—अपने छोटे भाइयों सहित; कच्चित्—क्या; कुशली—सभी कुशल; आनक-दुन्दुभिः—वसुदेव।

मेरे आदरणीय नाना शूरसेन प्रसन्न तो हैं? तथा मेरे मामा वसुदेव तथा उनके छोटे भाई ठीक से तो हैं?

सप्त स्वसारस्तत्पत्न्यो मातुलान्यः सहात्मजाः ।

आसते सस्नुषाः क्षेमं देवकीप्रमुखाः स्वयम् ॥ २७ ॥

## शब्दार्थ

सप्त—सात; स्व-सारः—परस्पर बहनें; तत्-पत्न्यः—उनकी पत्नियाँ; मातुलान्यः—मौसियाँ; सह—के साथ; आत्म-जाः—पुत्र तथा पौत्र; आसते—सभी हैं; सस्नुषाः—अपनी बहुओं सहित; क्षेमम्—सुख; देवकी—देवकी; प्रमुखाः—अग्रणी; स्वयम्—स्वयं।

देवकी इत्यादि उनकी सातों पत्नियाँ परस्पर बहनें हैं। वे तथा उनके पुत्र एवं बहुएँ सब सुखी तो हैं?

कच्चिद्राजाहुको जीवत्यसत्पुत्रोऽस्य चानुजः ।

हृदीकः ससुतोऽक्रूरो जयन्तगदसारणाः ॥ २८ ॥

आसते कुशलं कच्चिद्ये च शत्रुजिदादयः ।

कच्चिदास्ते सुखं रामो भगवान् सात्वतां प्रभुः ॥ २९ ॥

## शब्दार्थ

कच्चित्—क्या; राजा—राजा; आहुकः—उग्रसेन का अन्य नाम; जीवति—अब भी जीवित है; असत्—शैतान, दुष्ट; पुत्रः—पुत्र; अस्य—उनका; च—भी; अनुजः—छोटा भाई; हृदीकः—हृदीक; स-सुतः—अपने पुत्र कृतवर्मा समेत; अक्रूरः—अक्रूर; जयन्त—जयन्त; गद—गद; सारणाः—सारण; आसते—सब हैं; कुशलम्—आनन्द से; कच्चित्—क्या; ये—वे; च—भी; शत्रुजित्—शत्रुजित; आदयः—आदि; कच्चित्—क्या; आस्ते—वे हैं; सुखम्—अच्छी तरह; रामः—बलराम; भगवान्—भगवान्; सात्वताम्—भक्तों के; प्रभुः—रक्षक।

क्या उग्रसेन जिसका पुत्र दुष्ट कंस था तथा उनका छोटा भाई अब भी जीवित हैं? क्या हृदीक तथा उसका पुत्र कृतवर्मा कुशल से हैं? क्या अक्रूर, जयन्त, गद, सारण तथा शत्रुजित प्रसन्न हैं? भक्तों के रक्षक भगवान् बलराम कैसे हैं?

तात्पर्य : पाण्डवों की राजधानी हस्तिनापुर आजकल की नई दिल्ली के निकट कहीं पर स्थित थी और उग्रसेन का राज्य मथुरा में था। द्वारका से दिल्ली लौटते हुए, अर्जुन अवश्य ही मथुरा नगरी गये

होंगे, अतएव मथुरा के राजा के विषय में पूछताछ योग्य है। सम्बन्धियों के विविध नामों में से भगवान् कृष्ण के बड़े भाई, राम या बलराम के साथ, भगवान् शब्द जुड़ा हुआ है, क्योंकि भगवान् बलराम विष्णु-तत्त्व के तुरन्त के विस्तार हैं और भगवान् कृष्ण के प्रकाश-विग्रह हैं। परमेश्वर यद्यपि अद्वितीय हैं, किन्तु वे अन्य तमाम जीवों के रूप में विस्तार करते हैं। विष्णु-तत्त्व, परमेश्वर के अंश (विस्तार) हैं और वे सब गुण तथा परिमाण की दृष्टि से भगवान् के तुल्य हैं। लेकिन जीवशक्ति के अंश सामान्य जीवों की श्रेणी में आते हैं और वे जरा भी भगवान् के तुल्य नहीं हैं। जो कोई जीवशक्ति तथा विष्णु-तत्त्व को समान स्तर पर मानता है, उसे संसार का अधम जीव समझा जाता है। श्रीराम या बलराम भगवद्भक्तों के रक्षक हैं। वे समस्त भक्तों के गुरु हैं और उनकी अहैतुकी कृपा से पतित आत्माओं का उद्धार होता है। भगवान् चैतन्य के आविर्भाव के समय, श्रीबलदेव श्रीनित्यानन्द प्रभु के रूप में प्रकट हुए थे, जिन्होंने जगाइ तथा माधाइ नामक दो अत्यन्त अधम जीवों का उद्धार अपनी अहैतुकी कृपा द्वारा किया। अतएव यहाँ इसका विशेष उल्लेख है कि बलराम भगवद्भक्तों के रक्षक हैं। उनकी दैवी कृपा से ही कोई परमेश्वर कृष्ण तक पहुँच सकता है। अतएव श्रीबलराम भगवान् के कृपा-अवतार हैं, जो गुरु के रूप में, शुद्ध भक्तों के त्राता के रूप में, प्रकट होते हैं।

प्रद्युम्नः सर्ववृष्णीनां सुखमास्ते महारथः ।

गम्भीररयोऽनिरुद्धो वर्धते भगवानुत ॥ ३० ॥

### शब्दार्थ

प्रद्युम्नः—प्रद्युम्न ( भगवान् कृष्ण के पुत्र ); सर्व—सभी; वृष्णीनाम्—वृष्णि-परिवार के सदस्यों का; सुखम्—सुख; आस्ते—  
हैं; महा-रथः—महान् सेनापति; गम्भीर—गहराई से; रयः—दक्षता; अनिरुद्धः—अनिरुद्ध ( कृष्ण का पौत्र ); वर्धते—बढ़ता है;  
भगवान्—भगवान्; उत—अवश्य चाहिए।

वृष्णि-कुल के महान् सेनापति प्रद्युम्न कैसे हैं? वे प्रसन्न तो हैं? और भगवान् के पूर्ण अंश अनिरुद्ध ठीक से तो हैं?

तात्पर्य : प्रद्युम्न और अनिरुद्ध भी भगवान् के अंश हैं और इस तरह वे दोनों भी विष्णु-तत्त्व हैं। द्वारका में भगवान् वासुदेव, अपने पूर्णांशों—संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध—सहित अपनी दिव्य लीलाओं में व्यस्त रहते हैं। अतएव इनमें से प्रत्येक को भगवान् कहा जा सकता है जैसाकि अनिरुद्ध नाम के साथ कहा जा चुका है।



सुषेणश्चारुदेष्णश्च साम्बो जाम्बवतीसुतः ।

अन्ये च कार्ष्णिप्रवराः सपुत्रा ऋषभादयः ॥ ३१ ॥

### शब्दार्थ

सुषेणः—सुषेण; चारुदेष्णः—चारुदेष्ण; च—तथा; साम्बः—साम्ब; जाम्बवती-सुतः—जाम्बवती का पुत्र; अन्ये—अन्य; च—भी; कार्ष्णि—भगवान् कृष्ण के पुत्र; प्रवराः—सेना-नायक; स-पुत्राः—अपने-अपने पुत्रों सहित; ऋषभ—ऋषभ; आदयः—इत्यादि ।

कृष्ण के सभी सेना-नायक पुत्र यथा सुषेण, चारुदेष्ण, जाम्बवती-पुत्र साम्ब तथा ऋषभ अपने-अपने पुत्रों समेत ठीक से तो रह रहे हैं ?

तात्पर्य : जैसाकि पहले कहा चुका है, भगवान् कृष्ण की १६,१०८ पत्नियाँ थीं और हर एक को दस-दस पुत्र थे। अतएव कुल मिलाकर १६,१०८ x १०=१,६१,०८० पुत्र थे। वे सब बड़े हुए तो उनके भी अपने-अपने पिता की तरह दस-दस पुत्र हुए, जिससे भगवान् के परिवार में १६,१०,८०० सदस्य थे। भगवान् असंख्य जीवों के पिता हैं, अतएव उनमें कुछ ही इस पृथ्वी पर भगवान् की द्वारका की दिव्य लीलाओं में उनके संगी रूप में बुलाए गये थे। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि भगवान् के परिवार में इतने सारे लोग थे। अच्छा तो यह होगा कि भगवान् की तुलना अपने साथ करने से बचा जाय और ज्योंही हम भगवान् के दिव्य पद के थोड़े से अंश को ही समझ लेते हैं, त्योंही यह बात एक सच्चाई बन जाती है। राजा युधिष्ठिर ने द्वारका-स्थित भगवान् के पुत्रों तथा पौत्रों का कुशल समाचार पूछते समय उनमें से केवल सेनानायकों के ही नाम लिये हैं, क्योंकि कृष्ण के परिवार भर के सदस्यों के नाम स्मरण रख पाना राजा के लिए सम्भव न था।

तथैवानुचराः शौरैः श्रुतदेवोद्धवादयः ।

सुनन्दनन्दशीर्षण्या ये चान्ये सात्वतर्षभाः ॥ ३२ ॥

अपि स्वस्त्यासते सर्वे रामकृष्णभुजाश्रयाः ।

अपि स्मरन्ति कुशलमस्माकं बद्धसौहदाः ॥ ३३ ॥

### शब्दार्थ

तथा एव—इसी प्रकार; अनुचराः—नित्य-संगी; शौरैः—भगवान् श्रीकृष्ण के, यथा; श्रुतदेव—श्रुतदेव; उद्धव-आदयः—उद्धव तथा अन्य; सुनन्द—सुनन्द; नन्द—नन्द; शीर्षण्याः—अन्य नायक; ये—वे सब; च—तथा; अन्ये—अन्य; सात्वत—मुक्त जीव; ऋषभाः—श्रेष्ठ पुरुष; अपि—यदि; स्वस्ति—कुशल से; आसते—हैं; सर्वे—वे सब; राम—बलराम; कृष्ण—भगवान् कृष्ण;

भुज-आश्रयाः—के संरक्षण में; अपि—यदि भी; स्मरन्ति—स्मरण करते हैं; कुशलम्—कुशलता; अस्माकम्—हमारे; बद्ध-सौहृदाः—शाश्वत मैत्री से बँधे हुए।

इसके अतिरिक्त, श्रुतदेव, उद्धव तथा अन्य, नन्द, सुनन्द तथा अन्य मुक्तात्माओं के नायक, जो भगवान् के नित्यसंगी हैं, भगवान् बलराम तथा कृष्ण द्वारा सुरक्षित तो हैं? वे सब अपना-अपना कार्य ठीक से चला रहे हैं न? वे जो हमसे नित्य मैत्री-पाश में बँधे हैं, हमारी कुशलता के बारे में पूछते तो हैं?

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण के नित्यसंगी, यथा उद्धव, सबके सब मुक्तात्माएँ हैं और वे भगवान् के ही कार्य को परिपूर्ण करने के लिए इस धरा पर अवतरित हुए थे। पाण्डव-जन भी मुक्तात्माएँ हैं, जो भगवान् के साथ इस पृथ्वी पर उनकी दिव्य लीलाओं में सेवा करने के लिए अवतरित हुए। जैसा कि *भगवद्गीता* (४.८) में कहा गया है, भगवान् तथा भगवान् की ही तरह मुक्तात्माएँ, उनके नित्यसंगी, कुछ-कुछ अन्तरालों के बाद इस पृथ्वी पर आते रहते हैं। भगवान् उन सबों को स्मरण रखते हैं, लेकिन उनके संगी, मुक्तात्माएँ होते हुए भी, *तटस्था* शक्ति होने के कारण भूल जाते हैं। *विष्णु तत्त्व* तथा *जीव तत्त्व* में यही अन्तर होता है। जीव-तत्त्व भगवान् के अत्यन्त सूक्ष्म शक्तिमान कण हैं, अतएव उन्हें सदैव भगवान् की सुरक्षा की आवश्यकता पड़ती है और भगवान् अपने सेवकों को सर्वदा समस्त सुरक्षा प्रदान करने में प्रसन्न रहते हैं। अतएव मुक्तात्माएँ कभी भी अपने को भगवान् के समान मुक्त या भगवान् के समान शक्तिमान नहीं मानतीं, अपितु सभी परिस्थितियों में, चाहे भौतिक जगत में हों या आध्यात्मिक जगत में, भगवान् की सुरक्षा की कामना करती हैं। मुक्तात्मा की यह पराश्रयता स्वाभाविक है, क्योंकि मुक्तात्माएँ अग्नि के स्फुलिंगों की भाँति हैं, जो अग्नि की उपस्थिति में ही अपनी चमक दिखा सकती हैं, स्वतंत्र रूप से नहीं। स्वतंत्र रूप से, स्फुलिंग की चमक बुझ जाती है, भले ही उसमें अग्नि के गुण तथा चमक रहती है। अतएव जो भगवान् की सुरक्षा त्यागकर, आध्यात्मिक अज्ञान के कारण स्वयं प्रभु बन जाते हैं, वे पुनः इस भौतिक जगत में आते हैं, भले ही वे कठोर से कठोर तपस्या क्यों न करें। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य का यही मत है।

भगवानपि गोविन्दो ब्रह्मण्यो भक्तवत्सलः ।

कच्चित्पुरे सुधर्मायां सुखमास्ते सुहृद्वृतः ॥ ३४ ॥

## शब्दार्थ

भगवान्— भगवान् कृष्ण; अपि—भी; गोविन्दः— जो गायों तथा इन्द्रियों को अनुप्राणित करते हैं; ब्रह्मण्यः— भक्तों या ब्राह्मणों को समर्पित; भक्त-वत्सलः— भक्तों के प्रति स्नेहपूर्ण; कच्चित्—क्या; पुरे—द्वारकापुरी में; सुधर्मायाम्—पवित्र सभा में; सुखम्—सुख; आस्ते—भोग करते हैं; सुहृत्-वृतः— मित्रों से घिरे हुए।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण, जो गायों, इन्द्रियों तथा ब्राह्मणों को आनन्द प्रदान करने वाले हैं और अपने भक्तों के प्रति अत्यन्त वत्सल हैं, अपने मित्रों से घिर कर, द्वारकापुरी में पवित्र सभा का भोग तो कर रहे हैं ?

तात्पर्य : इस विशिष्ट श्लोक में भगवान् का वर्णन गोविन्द, ब्रह्मण्य तथा भक्तवत्सल शब्दों से किया गया है। वे भगवान् स्वयं अर्थात् आदि भगवान् हैं और वे समस्त ऐश्वर्य, समस्त शक्ति, समस्त ज्ञान, समस्त सौन्दर्य, समस्त यश तथा समस्त त्याग से परिपूर्ण हैं। कोई न तो उनके तुल्य है, न उनसे बढ़कर है। वे गोविन्द हैं, क्योंकि वे गौवों तथा इन्द्रियों के आनन्द हैं। जिन्होंने भगवान् की भक्तिमय सेवा द्वारा अपनी इन्द्रियों को शुद्ध कर लिया है, वे ही उनकी वास्तविक सेवा कर सकते हैं और ऐसी शुद्ध इन्द्रियों के द्वारा दिव्य आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। केवल अशुद्ध बद्धजीव ही, इन्द्रियों से कोई आनन्द प्राप्त नहीं कर पाते, अपितु इन्द्रियों के मिथ्या आनन्द से मोहग्रस्त हो करके इन्द्रियों के दास बन जाते हैं। अतएव अपने हित के लिए हमें भगवान् के संरक्षण की आवश्यकता है। भगवान् गायों के तथा ब्राह्मण-संस्कृति के रक्षक हैं। जो समाज गो-संरक्षण तथा ब्राह्मण-संस्कृति से विहीन है, वह भगवान् के प्रत्यक्ष संरक्षण में नहीं होता, जिस तरह कि कारागार के बन्दी राजा के संरक्षण में न रहकर, राजा के किसी कठोर प्रतिनिधि के संरक्षण में रहते हैं। गो-संरक्षण तथा मानव समाज में, कम से कम समाज के कुछ सदस्यों में, ब्राह्मण गुणों के अनुशीलन के बिना कोई भी मानव सभ्यता उन्नति नहीं कर सकती। ब्राह्मण संस्कृति से ही ब्राह्मण बना जा सकता है और भगवान् के यथारूप में दर्शन किये जा सकते हैं। ब्राह्मण संस्कृति सुप्त सत्त्वगुणों का विकास है, जिसमें सत्यनिष्ठा, समता, इन्द्रिय निग्रह, सहिष्णुता, सरलता, सामान्य ज्ञान, दिव्य ज्ञान तथा वैदिक वाङ्मय में अटूट श्रद्धा सम्मिलित हैं। ब्राह्मणत्व की पूर्णता पा लेने के बाद, मनुष्य को भगवद्भक्त बनना होता है, जिससे मालिक, स्वामी, मित्र, पुत्र तथा प्रेमी के रूप में उनके स्नेह को दिव्य रूप से प्राप्त किया जा सके। भक्त की अवस्था, जो भगवान् के दिव्य प्रेम को आकर्षित करती है, उसका तब तक विकास नहीं होता, जब तक मनुष्य उपरोक्त ब्राह्मणत्व के गुणों का विकास नहीं करता। भगवान् ब्राह्मण के गुणों की ओर आकृष्ट होते हैं,

उसकी झूठी प्रतिष्ठा की ओर नहीं। जो लोग योग्यता में ब्राह्मण से कम होते हैं, वे भगवान् से किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकते हैं, जैसे कि काष्ठ के बिना कच्ची मिट्टी में आग नहीं जलाई जा सकती, यद्यपि काष्ठ तथा मिट्टी में पारस्परिक सम्बन्ध होता है। चूँकि भगवान् परम पूर्ण हैं, अतएव उनकी कुशलता का प्रश्न ही नहीं उठता। अतएव महाराज युधिष्ठिर ने यह प्रश्न नहीं पूछा। उन्होंने केवल उनके आवास स्थान 'द्वारकापुरी' के सम्बन्ध में ही पूछा, जहाँ पुण्यात्मा एकत्र होते हैं। भगवान् वहीं रहते हैं, जहाँ पुण्यात्माएँ एकत्र होती हैं और परम सत्य के गुणगान में आनन्द लेते हैं। महाराज युधिष्ठिर द्वारका के पवित्र व्यक्तियों तथा उनके पुण्य कर्मों के विषय में जानने के लिए उत्सुक थे।

मङ्गलाय च लोकानां क्षेमाय च भवाय च ।

आस्ते यदुकुलाम्भोधावाद्योऽनन्तसखः पुमान् ॥ ३५ ॥

यद्बाहुदण्डगुप्तायां स्वपुर्या यदवोऽर्चिताः ।

क्रीडन्ति परमानन्दं महापौरुषिका इव ॥ ३६ ॥

### शब्दार्थ

मङ्गलाय—कल्याण के लिए; च—भी; लोकानाम्—समस्त लोकों के; क्षेमाय—सुरक्षा के लिए; च—तथा; भवाय—उन्नति के लिए; च—भी; आस्ते—हैं; यदु-कुल-अम्भोधौ—यदुवंश रूपी सागर में; आद्यः—आदि; अनन्त-सखः—अनन्त ( बलराम ) के साथ; पुमान्—परम भोक्ता; यत्—जिसको; बाहु-दण्ड-गुप्तायाम्—उनके बाहुओं से सुरक्षित होकर; स्व-पुर्याम्—अपनी नगरी में; यदवः—यदुवंश के सदस्य; अर्चिताः—योग्यता के अनुसार; क्रीडन्ति—आनन्द ले रहे हैं; परम-आनन्दम्—दिव्य आनन्द; महा-पौरुषिकाः—वैकुण्ठ के वासी; इव—सदृश।

परम भोक्ता आदि भगवान् तथा जो मूल भगवान् अनन्त हैं, बलराम यदुवंश रूपी सागर में समस्त ब्रह्माण्ड के कल्याण, सुरक्षा तथा उन्नति के लिए निवास कर रहे हैं। और सारे यदुवंशी भगवान् की भुजाओं द्वारा सुरक्षित रहकर, वैकुण्ठवासियों की भाँति जीवन का आनन्द उठा रहे हैं।

तात्पर्य : जैसाकि हम कई बार बता चुके हैं, भगवान् विष्णु प्रत्येक ब्रह्माण्ड में दो रूपों में निवास करते हैं—गर्भोदकशायी विष्णु के रूप में तथा क्षीरोदकशायी विष्णु के रूप में। क्षीरोदकशायी विष्णु का अपना लोक है, जो ब्रह्माण्ड के उत्तरी शीर्ष पर है और वहाँ क्षीर का एक विशाल समुद्र है, जिसमें वे बलदेव के अवतार अनन्त की शय्या पर वास करते हैं। इस प्रकार महाराज युधिष्ठिर ने यदुवंश की तुलना क्षीरसागर से की है और श्री बलराम की तुलना अनन्त से की है, जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण वास

करते हैं। उन्होंने द्वारका के निवासियों की तुलना वैकुण्ठलोक के मुक्त निवासियों से की है। भौतिक आकाश के परे, जहाँ तक हमारी आँखें देख सकती हैं उससे भी आगे तथा ब्रह्माण्ड के सप्तावरणों के भी आगे कारणार्णव सागर है, जिसमें सारे ब्रह्माण्ड गेंद की तरह तैर रहे हैं। इस कारण सागर के आगे वैकुण्ठलोक का असीम पाट है, जिसे सामान्यतया ब्रह्मतेज कहते हैं। इस तेज में असंख्य आध्यात्मिक ग्रह हैं और वे वैकुण्ठलोक के नाम से जाने जाते हैं। इनमें से प्रत्येक वैकुण्ठ ग्रह इस भौतिक जगत के सबसे बड़े ब्रह्माण्ड से भी बड़ा है और प्रत्येक में असंख्य निवासी रहते हैं, जो बिलकुल भगवान् विष्णु जैसे दिखते हैं। ये निवासी महापौरुषिक कहलाते हैं—अर्थात् ऐसे पुरुष, जो प्रत्यक्ष रूप में भगवान् की सेवा में लगे रहते हैं। वे उन ग्रहों में सुखी हैं और उन्हें कोई कष्ट नहीं सताता, वे सदैव तरुण बने रहते हैं और पूर्ण आनन्द तथा ज्ञान का जीवन बिताते हैं जिसमें जन्म, मृत्यु, जरा या रोग का कोई भय नहीं रहता और उन पर काल का प्रभाव नहीं पड़ता। महाराज युधिष्ठिर ने द्वारकावासियों की तुलना वैकुण्ठलोक के महापौरुषिकों से की है, क्योंकि वे भगवान् के साथ परम प्रसन्न हैं। *भगवद्गीता* में वैकुण्ठलोकों का कई बार संदर्भ आया है और वहाँ वे *मद्दाम* (मेरे धाम) के रूप में अर्थात् भगवद्दाम के रूप में वर्णित हुए हैं।

यत्पादशुश्रूषणमुख्यकर्मणा  
सत्यादयो द्व्यष्टसहस्रयोषितः ।  
निर्जित्य सङ्ख्ये त्रिदशांस्तदाशिषो  
हरन्ति वज्रायुधवल्लभोचिताः ॥ ३७ ॥

### शब्दार्थ

यत्—जिसका; पाद—पैर; शुश्रूषण—भोग; मुख्य—सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण; कर्मणा—कर्म के; सत्य-आदयः—सत्यभामा इत्यादि रानियाँ; द्वि-अष्ट—आठ का दो गुना ( सोलह ); सहस्र—हजार; योषितः—स्त्रियाँ; निर्जित्य—दमन करके; सङ्ख्ये—युद्ध में; त्रि-दशान्—स्वर्ग के निवासियों को; तत्-आशिषः—देवताओं द्वारा भोग्य; हरन्ति—हर लेते हैं; वज्र-आयुध-वल्लभा—वज्र के स्वामी की पत्नियाँ; उचिताः—योग्य।

समस्त सेवाओं में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण, भगवान् के चरणकमलों की शुश्रूषा करने मात्र से, द्वारका-स्थित सत्यभामा के अधीक्षण में रानियों ने भगवान् को प्रेरित किया कि वे देवताओं को जीत लें। इस प्रकार रानियाँ उन वस्तुओं का भोग कर रही हैं, जो वज्र के नियंत्रक की पत्नियों द्वारा भोग्य हैं।

**तात्पर्य :** *सत्यभामा*—द्वारका में भगवान् श्रीकृष्ण की पटरानियों में से एक। नरकासुर का वध करने के बाद, भगवान् श्रीकृष्ण सत्यभामा के साथ नरकासुर के महल में गये। वे इन्द्रलोक भी सत्यभामा के साथ गये थे, जहाँ सत्यभामा का स्वागत शचीदेवी द्वारा हुआ जिन्होंने देवोंकी माता 'अदिति' से उनका परिचय कराया। अदिति सत्यभामा से अत्यन्त प्रसन्न हुई और उन्होंने वर दिया कि जब तक भगवान् कृष्ण पृथ्वी पर रहें, तब तक वे तरुणी बनी रहें। अदिति ने उन्हें स्वर्गलोक में देवताओं द्वारा भोग्य सारी वस्तुएँ भी दिखलाई। जब सत्यभामा ने पारिजात पुष्प देखा, तो उन्होंने उसे द्वारका स्थित अपने महल में ले जाने की इच्छा व्यक्त की। तत्पश्चात् वे अपने पति के साथ द्वारका लौट आईं और उनसे इच्छा व्यक्त की कि पारिजात पुष्प को द्वारका में उनके महल में ले आएँ। सत्यभामा का महल बहुमूल्य रत्नों से विशेष रूप से सुसज्जित किया गया था और ग्रीष्मऋतु में भी महल का भीतरी भाग शीतल बना रहता था, मानों वातानुकूलित हो। उन्होंने अपने महल को अनेक पताकाओं से सजा रखा था, जो उनके पति की उपस्थिति की सूचक थीं। एक बार वे अपने पति के साथ जब द्रौपदी से मिलीं, तो वे उत्सुक थीं कि उनसे पति को प्रसन्न करने की कला सीखें। द्रौपदी इस कला में निपुण थीं, क्योंकि उनके पाँच पति थे, जो पाण्डव थे और वे सब उनसे प्रसन्न थे। द्रौपदी से उपदेश लेकर, उन्होंने उनके प्रति शुभकामनाएँ व्यक्त कीं और द्वारका लौट आईं। वे सत्राजित की पुत्री थीं। भगवान् कृष्ण के प्रयाण के बाद, जब अर्जुन द्वारका गये तो सत्यभामा तथा रुक्मिणी समेत सारी रानियाँ कृष्ण के लिए अत्यधिक शोक कर रही थीं। अपने जीवन के अन्त-समय में, उन्होंने जंगल में जाकर कठिन तपस्या की।

सत्यभामा ने अपने पति को उकसाया कि वे स्वर्गलोक से पारिजात पुष्प लायें और भगवान् ने बलपूर्वक देवताओं से उसे प्राप्त किया, ठीक उसी तरह जिस प्रकार एक सामान्य पति अपनी पत्नी को रिझाने के लिए इच्छित वस्तुएँ लाता है। यह पहले ही बताया जा चुका है कि भगवान् को सामान्य व्यक्ति की भाँति अपनी पत्नियों के आदेशों को पूरा करने की आवश्यकता न थी, लेकिन चूँकि रानियों ने उच्चकोटि की भक्ति—भगवान् की शुश्रूषा—करना स्वीकार किया था, अतएव भगवान् भी आज्ञाकारी पति की भूमिका निभा रहे थे। पृथ्वी का कोई भी व्यक्ति स्वर्गलोक की कोई वस्तु और वह भी पारिजात पुष्प प्राप्त करने की बात सोच भी नहीं सकता, क्योंकि उसका उपयोग केवल देवता करते हैं।

लेकिन भगवान् की आज्ञाकारिणी पत्नियाँ होने के कारण, रानियों को भी स्वर्ग के निवासियों की पत्नियों जैसा विशेषाधिकार प्राप्त था। दूसरे शब्दों में, भगवान् अपनी सृष्टि की प्रत्येक वस्तु के स्वामी हैं, अतएव द्वारका की रानियों के लिए ब्रह्माण्ड की किसी भी दुर्लभ वस्तु को प्राप्त कर पाना आश्चर्यजनक नहीं था।

यद्बाहुदण्डाभ्युदयानुजीविनो  
यदुप्रवीरा ह्यकुतोभया मुहुः ।  
अधिक्रमन्त्यङ्घ्रिभिराहतां बलात्  
सभां सुधर्मा सुरसत्तमोचिताम् ॥ ३८ ॥

### शब्दार्थ

यत्—जिसके; बाहु-दण्ड—बाँहों के द्वारा; अभ्युदय—प्रभावित; अनुजीविनः—सदैव जीवित रहकर; यदु—यदुवंशी लोग; प्रवीराः—महान् वीर; हि अकुतोभयाः—सभी प्रकार से निर्भय; मुहुः—निरन्तर; अधिक्रमन्ति—पार करते हैं; अङ्घ्रिभिः—पैर से; आहताम्—लाये गये; बलात्—बलपूर्वक; सभाम्—सभाभवन को; सुधर्मा—सुधर्मा नामक; सुर-सत्-तम—देवताओं में श्रेष्ठ; उचिताम्—योग्य।

बड़े-बड़े यदुवंशी वीर भगवान् श्रीकृष्ण की बाहुओं द्वारा सुरक्षित रहकर सभी प्रकार से निर्भय बने रहते हैं। अतएव उनके चरण उस सुधर्मा के सभा-भवन में पड़ते रहते हैं, जो सर्वश्रेष्ठ देवताओं के लिए है, किन्तु जो उनसे छीन लिया गया था।

तात्पर्य : जो भगवान् के प्रत्यक्ष रूप में सेवक हैं, वे भगवान् द्वारा सभी प्रकार के भय से सुरक्षित रखे जाते हैं और सर्वोत्कृष्ट वस्तुओं का भोग करते हैं, चाहे वे बलपूर्वक एकत्र क्यों न की गई हों। भगवान् सभी जीवों के साथ समान व्यवहार करते हैं, किन्तु वे अपने भक्तों के प्रति अत्यधिक वत्सल होने के कारण विशेष पक्षपात करते हैं। द्वारकापुरी समुन्नति पर थी, क्योंकि वहाँ भौतिक संसार की श्रेष्ठतम वस्तुएँ उपलब्ध थीं। राज्य का सभा-भवन हर राज्य की प्रतिष्ठा के अनुसार बनाया जाता है। स्वर्गलोक में सुधर्मा नामक सभा-भवन श्रेष्ठ देवताओं की प्रतिष्ठा के अनुरूप था। ऐसा सभा-भवन महिमंडल के किसी भी राज्य के हेतु नहीं होता, क्योंकि पृथ्वी के मनुष्य इसका निर्माण नहीं कर सकते, चाहे कोई राज्य भौतिक रूप से कितना ही समृद्ध क्यों न हो। किन्तु जब भगवान् कृष्ण इस धरा पर विद्यमान थे, तो इस स्वर्गिक सभागार को यदुवंशियों ने छीनकर, इसे द्वारका में लाकर स्थापित किया था। वे ऐसा बल प्रयोग कर सकते थे, क्योंकि उन्हें विश्वास था कि परम भगवान् श्रीकृष्ण उनकी

रक्षा करेंगे। दूसरे शब्दों में, भगवान् के शुद्ध भक्त भगवान् के लिए ब्रह्माण्ड की श्रेष्ठ वस्तुएँ ला जुटाते हैं। यदुवंशियों ने भगवान् कृष्ण के लिए ब्रह्माण्ड में सुलभ सारे सुख-साधन जुटा दिये थे, जिसके बदले में भगवान् ऐसे भक्तों की रक्षा करते थे जिससे वे निर्भय थे।

भुलकड़ बद्धजीव भयभीत रहता है, किन्तु मुक्तात्मा कभी भयभीत नहीं रहता, जिस प्रकार एक छोटा-सा बालक जो अपने पिता की कृपा पर पूर्ण रूप से आश्रित रहता है वह कभी किसी से डरता नहीं। भीरुता जीव के लिए एक प्रकार का मोह है, जिसमें वह निद्रा में रहकर भगवान् के साथ अपने नित्य सम्बन्ध को भूल जाता है। चूँकि वैधानिक रूप से जीव कभी मरता नहीं, जैसा कि *भगवद्गीता* (२.२०) में कहा गया है, तो फिर भीरुता का क्या कारण है? कोई व्यक्ति स्वप्न में बाघ से डर सकता है, किन्तु उसी की बगल में जगते हुए व्यक्ति को कोई बाघ नहीं दिखता। यह बाघ दोनों के लिए, अर्थात् सोये हुए व्यक्ति के लिए तथा जागते हुए व्यक्ति के लिए मिथ्या है, क्योंकि वास्तव में वहाँ पर बाघ है ही नहीं। लेकिन जो व्यक्ति अपने जाग्रत जीवन को भूल जाता है, वह भयभीत रहता है और जो अपनी स्थिति को नहीं भूलता, वह बिल्कुल नहीं डरता। इस तरह सारे यदुवंशी भगवान् की सेवा के प्रति पूर्ण रूप से जागरूक थे। अतएव उनके लिए बाघ से किसी समय भी भयभीत होने का प्रश्न ही नहीं था। यदि असली बाघ होता भी, तो भगवान् उनकी रक्षा करने के लिए तो थे ही।

कच्चित्तेऽनामयं तात भ्रष्टतेजा विभासि मे ।

अलब्धमानोऽवज्ञातः किं वा तात चिरोषितः ॥ ३९ ॥

### शब्दार्थ

कच्चित्—कहीं; ते—तुम्हारा; अनामयम्—स्वास्थ्य ठीक तो है; तात—मेरे भ्राता; भ्रष्ट—विहीन; तेजाः—कान्ति; विभासि—प्रतीत होते हो; मे—मुझको; अलब्ध-मानः—सम्मान न पाया हुआ; अवज्ञातः—उपेक्षित; किम्—क्या; वा—अथवा; तात—मेरे भ्राता; चिरोषितः—दीर्घकाल तक रहने के कारण।

मेरे भाई अर्जुन, मुझे बताओ कि तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक तो है? ऐसा लगता है कि तुम्हारे शरीर की कान्ति खो गई है। क्या द्वारका में दीर्घकाल तक रहने से, अन्यो द्वारा असम्मान तथा उपेक्षा दिखलाने से ऐसा हुआ है?

तात्पर्य : महाराज युधिष्ठिर ने सभी प्रकार से अर्जुन से द्वारका का कुशलक्षेम पूछा, लेकिन उन्होंने अन्त में यही निष्कर्ष निकाला कि जब तक स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ थे, तब तक कोई अशुभ घटना



नहीं घट सकती थी। लेकिन साथ ही, अर्जुन कान्तिहीन लग रहे थे, अतएव राजा ने उनसे उनकी कुशलता पूछी और साथ ही अन्य महत्त्वपूर्ण प्रश्न भी पूछे।

कच्चिन्नाभिहतोऽभावैः शब्दादिभिरमङ्गलैः ।

न दत्तमुक्तमर्थिभ्य आशया यत्प्रतिश्रुतम् ॥ ४० ॥

### शब्दार्थ

कच्चित्—कहीं; न—नहीं; अभिहतः—सम्बोधित, कहा गया; अभावैः—अमित्रतापूर्ण; शब्द-आदिभिः—शब्दों आदि से; अमङ्गलैः—अशुभ; न—नहीं; दत्तम्—दान में दिया गया; उक्तम्—कहा गया; अर्थिभ्यः—याचक को; आशया—आशा से; यत्—जो; प्रतिश्रुतम्—दिये जाने के लिए वचन-बद्ध।

कहीं किसी ने तुम्हें अपमानजनक शब्द तो नहीं कहे? या तुम्हें धमकाया तो नहीं? क्या तुम याचक को दान नहीं दे सके? या किसी से अपना वचन नहीं निभा पाये?

तात्पर्य : क्षत्रिय या धनी व्यक्ति के पास कभी-कभी ऐसे व्यक्ति आते हैं, जिन्हें धन की आवश्यकता रहती है। जब उन्हें दान देने के लिए कहा जाता है, तो धन के स्वामी का कर्तव्य है कि पात्र, देश तथा काल का विचार करते हुए दान दे। यदि क्षत्रिय या धनी व्यक्ति इस कर्तव्य को पूरा नहीं कर पाता, तो उसे इस विसंगति के लिए खेद होना चाहिए। इसी प्रकार दान देने के अपने वचन को नहीं भूलना चाहिए। ये त्रुटियाँ कभी-कभी निराशा का कारण बनती हैं और विफल होने पर मनुष्य आलोचना का भागी होता है और यही अर्जुन की विपन्नावस्था का कारण हो सकता था।

कच्चित्त्वं ब्राह्मणं बालं गां वृद्धं रोगिणं स्त्रियम् ।

शरणोपसृतं सत्त्वं नात्याक्षीः शरणप्रदः ॥ ४१ ॥

### शब्दार्थ

कच्चित्—कहीं; त्वम्—तुम; ब्राह्मणम्—ब्राह्मणों को; बालम्—बालक को; गाम्—गाय को; वृद्धम्—बूढ़े व्यक्ति को; रोगिणम्—रोगी को; स्त्रियम्—स्त्री को; शरण-उपसृतम्—रक्षा के लिए आये हुए को; सत्त्वम्—किसी जीव को; न—क्या; अत्याक्षीः—शरण नहीं दी हो; शरण-प्रदः—जो शरण का पात्र रहा है।

तुम तो सदा से सुपात्र जीवों के यथा ब्राह्मणों, बालकों, गायों, स्त्रियों तथा रोगियों के रक्षक रहे हो। क्या तुम उनके शरण माँगे जाने पर उन्हें शरण नहीं दे सके?

तात्पर्य : ब्राह्मण-जन समाज के कल्याण-कार्य के लिए भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों ही दृष्टि से ज्ञान की खोज में सदैव लगे रहते हैं, अतः वे सभी प्रकार से राजा के संरक्षण के पात्र हैं। इसी प्रकार

राज्य के बालकों, गायों, रोगी व्यक्तियों, स्त्रियों तथा वृद्ध पुरुषों को राज्य या क्षत्रिय राजाओं के संरक्षण की अपेक्षा रहती है। यदि ऐसे जीवों को क्षत्रिय या राजा या राज-सत्ता की ओर से संरक्षण नहीं मिलता, तो यह क्षत्रिय या राज्य के लिए लज्जास्पद है। यदि अर्जुन के साथ सचमुच ही ऐसी घटनाएँ घटी थीं, तो महाराज युधिष्ठिर उनके विषय में जानने के लिए आतुर थे।

कच्चित्त्वं नागमोऽगम्यां गम्यां वासत्कृतां स्त्रियम् ।

पराजितो वाथ भवान्नोत्तमैर्नासमैः पथि ॥ ४२ ॥

### शब्दार्थ

कच्चित्—कहीं; त्वम्—तुमने; न—नहीं; अगमः—सम्पर्क किया है; अगम्याम्—दुश्चरित्र; गम्याम्—स्वीकार्य; वा—अथवा; असत्-कृताम्—अनुचित व्यवहार; स्त्रियम्—स्त्री से; पराजितः—हराया हुआ; वा—अथवा; अथ—अन्ततः; भवान्—तुम; न—न तो; उत्तमैः—उच्चतर शक्ति द्वारा; न—नहीं; असमैः—समान धर्म वाले द्वारा; पथि—मार्ग में।

क्या तुमने दुश्चरित्र स्त्री से समागम किया है अथवा सुपात्र स्त्री के साथ तुमने भद्र व्यवहार नहीं किया? अथवा तुम मार्ग में किसी ऐसे व्यक्ति के द्वारा पराजित किये गये हो, जो तुमसे निकृष्ट है या तुम्हारे समकक्ष हो?

तात्पर्य : इस श्लोक से ऐसा प्रतीत होता है कि पाण्डवों के काल में पुरुष तथा स्त्री को, कतिपय परिस्थितियों में मुक्त ही, समागम करने दिया जाता था। उच्च जाति के लोग अर्थात् ब्राह्मण तथा क्षत्रिय वैश्य या शूद्र जाति की स्त्री को स्वीकार कर सकते थे, किन्तु निम्न जाति का व्यक्ति उच्च जाति की स्त्री से सम्पर्क नहीं कर सकता था। यहाँ तक कि क्षत्रिय भी ब्राह्मण जाति की स्त्री से समागम नहीं कर सकता था। ब्राह्मण की पत्नी सात माताओं में से एक मानी जाती है (अपनी माता, गुरु अथवा शिक्षक की पत्नी, ब्राह्मणी, राजा की पत्नी, गाय, धाय तथा पृथ्वी—ये सप्त मातृकाएँ हैं)। पुरुष तथा स्त्री के ऐसे समागम को उत्तम तथा अधम कहा जाता था। ब्राह्मण पुरुष तथा क्षत्रिय स्त्री का समागम उत्तम होता था, किन्तु क्षत्रिय पुरुष तथा ब्राह्मण स्त्री का समागम अधम होता था, अतएव कुत्सित माना जाता था। यदि कोई स्त्री, किसी पुरुष के पास समागम की इच्छा से जाये, तो उसे कभी मना नहीं करना चाहिए, लेकिन जैसाकि ऊपर कहा गया है, विवेक से काम लेना चाहिए। भीम के पास हिडिम्बा आई थी और वह शूद्र से भी निम्न जाति की थी। ययाति ने शुक्राचार्य की पुत्री के साथ विवाह करने से इनकार कर दिया था, क्योंकि शुक्राचार्य ब्राह्मण थे। व्यासदेव ब्राह्मण थे। उनसे पाण्डु तथा धृतराष्ट्र को

जन्म देने के लिए कहा गया था। सत्यवती मछुआरे की जाति की कन्या थी, लेकिन महान् ब्राह्मण पराशर द्वारा उससे व्यासदेव का जन्म हुआ। अतएव स्त्री के साथ समागम के अनेक उदाहरण हैं, किन्तु ये सारे समागम न तो निन्दनीय थे, न ऐसे समागम के परिणाम बुरे थे। पुरुष तथा स्त्री का समागम स्वाभाविक है, लेकिन इसे भी विधानपूर्वक होना चाहिए, जिससे सामाजिक प्रतिष्ठा न बिगड़े या वर्णसंकर की वृद्धि होने से विश्व में अशान्ति न फैले।

क्षत्रिय के लिए यह निन्दनीय है कि वह अपने से निम्न या समकक्ष बलवाले से पराजित हो। यदि कोई हारे, तो उसे किसी श्रेष्ठ शक्ति से हारना चाहिए। अर्जुन भीष्मदेव से पराजित हुए थे और कृष्ण ने उन्हें विपत्ति से बचाया था। यह अर्जुन के लिए अपमान नहीं था, क्योंकि भीष्मदेव सभी प्रकार से अर्जुन से श्रेष्ठ थे—चाहे आयु को लें, सम्मान को लें, या बल को लें। लेकिन कर्ण अर्जुन के समकक्ष था। अतएव कर्ण से युद्ध करते हुए अर्जुन संकट में था। अर्जुन को यह बुरा लगा, अतएव कर्ण छल से भी मारा गया। क्षत्रिय के ऐसे-ऐसे कार्य होते हैं और महाराज युधिष्ठिर ने अपने भाई से पूछा कि द्वारका से घर आते हुए कहीं कोई प्रतिकूल घटना तो नहीं घट गई?

अपि स्वित्पर्यभुङ्क्थास्त्वं सम्भोज्यान् वृद्धबालकान् ।

जुगुप्सितं कर्म किञ्चित्कृतवान्न यदक्षमम् ॥ ४३ ॥

### शब्दार्थ

अपि स्वित्—यदि ऐसा हो तो; पर्य—एक ओर छोड़कर; भुङ्क्थाः—खाया है; त्वम्—तुमने; सम्भोज्यान्—साथ-साथ खाने के योग्य; वृद्ध—वृद्ध पुरुषों को; बालकान्—बच्चों को; जुगुप्सितम्—गर्हित; कर्म—काम; किञ्चित्—कुछ; कृतवान्—तुमने किया होगा; न—नहीं; यत्—जो; अक्षमम्—जिसे क्षमा न किया जा सके।

क्या तुमने उन वृद्धों तथा बालकों की परवाह नहीं की, जो तुम्हारे साथ भोजन करने के योग्य थे? क्या उन्हें छोड़कर तुमने अकेले भोजन किया है? क्या तुमने कोई अक्षम्य गलती की है, जो निन्दनीय मानी जाती है?

तात्पर्य : गृहस्थ का धर्म है कि वह पहले बालकों, परिवार के बूढ़ों, ब्राह्मणों तथा अशक्तों को भोजन करा दे। इसके साथ ही, आदर्श गृहस्थ को चाहिए कि यदि कोई अज्ञात भूखा व्यक्ति हो, तो उसे बुलाकर खिला दे और तब स्वयं भोजन करे। उसे ऐसे भूखे व्यक्ति को मार्ग में जाकर तीन बार बुलाना

चाहिए। गृहस्थ के लिए निर्धारित इस कर्तव्य की अवहेलना, विशेषकर बूढ़ों तथा बच्चों की अवहेलना, अक्षम्य है।

कच्चित् प्रेष्ठतमेनाथ हृदयेनात्मबन्धुना ।

शून्योऽस्मि रहितो नित्यं मन्यसे तेऽन्यथा न रुक् ॥ ४४ ॥

### शब्दार्थ

कच्चित्—कहीं; प्रेष्ठ-तमेन—सर्वाधिक प्रिय को; अथ—मेरा भाई अर्जुन; हृदयेन—अत्यन्त घनिष्ठ; आत्म-बन्धुना—अपने मित्र कृष्ण से; शून्यः—शून्य; अस्मि—हूँ; रहितः—खोकर; नित्यम्—सदा के लिए; मन्यसे—तुम सोचते हो; ते—तुम्हारा; अन्यथा—अन्यथा; न—कभी नहीं; रुक्—मानसिक ताप।

अथवा कहीं ऐसा तो नहीं है कि तुम इसलिए रिक्त अनुभव कर रहे हो, क्योंकि तुमने अपने घनिष्ठ मित्र भगवान् कृष्ण को खो दिया हो? हे मेरे भ्राता अर्जुन, तुम्हारे इतने हताश होने का मुझे कोई अन्य कारण नहीं दिखता।

तात्पर्य : विश्व की विसंगतियों के कारण के विषय में महाराज युधिष्ठिर की सारी जिज्ञासाओं का अन्दाज विश्व की दृष्टि से भगवान् कृष्ण के अन्तर्धान होने के आधार पर लगाया गया था। और अब अर्जुन की घोर निराशा के कारण उसे उन्होंने प्रकट कर दिया, जो अन्यथा सम्भव नहीं हो पाता। अतएव इसके बारे में संशयग्रस्त होते हुए भी, श्रीनारद के संकेत के अनुसार, उन्हें अर्जुन से स्पष्ट पूछने के लिए बाध्य होना पड़ा।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कंध के अन्तर्गत 'भगवान् कृष्ण का अन्तर्धान होना' नामक चौदहवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।